Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

स्वतंत्रता के पश्चात भारत में राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया (1947–1964): चुनौतियाँ एवं उपलब्धियाँ

Kumari Namrta
Research Scholar, Department of History, Amaltas University, Dewas
Dr. Vinay Kumar Singh
Supervisor, Department of History, Amaltas University, Dewas

शोध-सार

प्रस्तुत शोध-पत्र 1947 से 1964 तक की अवधि में भारत में सम्पन्न हुई राष्ट्र-निर्माण की बहुआयामी प्रक्रिया का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। यह कालखण्ड स्वतंत्र भारत के संस्थागत, संवैधानिक, आर्थिक एवं सामाजिक ढाँचे के निर्माण का निर्णायक काल था। पत्र यह तर्क प्रस्तुत करता है कि भारतीय राष्ट्र-निर्माण न तो किसी एकल नेतृत्व की योजना का परिणाम था और न ही किसी पश्चिमी प्रतिमान का अनुकरण, अपितु यह संवैधानिक विमर्श, प्रशासनिक नवाचार, राजनीतिक सौदेबाजी एवं व्यापक जन-सहभागिता की परस्पर क्रिया से उत्पन्न एक विवादग्रस्त किन्तु सृजनात्मक प्रक्रिया थी। विभाजन की त्रासदी, शरणार्थी पुनर्वास, रियासतों का एकीकरण, संविधान निर्माण, सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार का कार्यान्वयन, भाषाई आधार पर राज्यों का पुनर्गठन, नियोजित आर्थिक विकास, सामाजिक न्याय की संवैधानिक परियोजना तथा गुटनिरपेक्ष विदेश नीति—इन सभी आयामों का विश्लेषण करते हुए यह अध्ययन 2017 से 2024 के मध्य प्रकाशित नवीन शोध-साहित्य के आलोक में इस अवधि की उपलब्धियों एवं अन्तर्निहित सीमाओं का पुनर्मूल्यांकन करता है।

मुख्य शब्द: राष्ट्र-निर्माण, संवैधानिक लोकतंत्र, विभाजन, राज्य पुनर्गठन, नियोजित विकास, गुटनिरपेक्षता, सामाजिक न्याय

1. प्रस्तावना: शोध-प्रश्न, पद्धति एवं परिसीमन

15 अगस्त 1947 भारतीय इतिहास में केवल औपनिवेशिक सत्ता के अन्त का दिन नहीं था, अपितु एक कहीं अधिक जटिल एवं दीर्घकालिक परियोजना का प्रारम्भ बिन्दु था—एक ऐसे

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

राष्ट्र-राज्य का निर्माण जो विशाल भौगोलिक विस्तार, अपार भाषाई-धार्मिक विविधता, गहन निर्धनता एवं व्यापक निरक्षरता के मध्य लोकतांत्रिक आधार पर संगठित हो सके। समकालीन तुलनात्मक अनुभव इस उद्यम के विरुद्ध थे: उपनिवेशवाद से मुक्त हुए अधिकांश एशियाई एवं अफ्रीकी राष्ट्रों ने प्रारम्भिक दशकों में ही सत्तावादी अथवा सैन्य शासन का मार्ग अपनाया। इस पृष्ठभूमि में भारत का लोकतांत्रिक मार्ग-चयन एक असाधारण एवं व्याख्या की माँग करने वाला ऐतिहासिक तथ्य है (खोसला, 2020)।

प्रस्तुत अध्ययन तीन केन्द्रीय शोध-प्रश्नों से संचालित है। प्रथम, 1947 से 1964 के मध्य भारतीय राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया किन संस्थागत एवं वैचारिक साधनों के माध्यम से आगे बढ़ी? द्वितीय, इस प्रक्रिया के समक्ष उपस्थित चुनौतियों का स्वरूप क्या था तथा नेतृत्व एवं संस्थाओं ने उनका सामना किस प्रकार किया? तृतीय, इस अवधि की उपलब्धियों का यथार्थपरक मूल्यांकन क्या है, और इसकी वे सीमाएँ कौन-सी थीं जो आगामी दशकों में भारतीय लोकतंत्र के लिए स्थायी समस्याएँ बनीं?

अध्ययन की पद्धति ऐतिहासिक-विश्लेषणात्मक एवं गुणात्मक है। यह मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों—विशेषकर 2017 से 2024 के मध्य प्रकाशित नवीन अभिलेखीय शोध—पर आधारित है, जिन्होंने संविधान सभा की कार्यवाहियों, निर्वाचन आयोग के अभिलेखों, योजना आयोग के दस्तावेजों तथा प्रान्तीय प्रशासनिक अभिलेखों के आधार पर पूर्ववर्ती व्याख्याओं का पुनरीक्षण किया है। कालिक परिसीमन 1947 से 1964 तक है: प्रारम्भ बिन्दु सत्ता-हस्तांतरण है, तथा अन्तिम बिन्दु जवाहरलाल नेहरू का निधन, जो नेतृत्व-परिवर्तन के साथ-साथ नियोजित विकास एवं गुटनिरपेक्षता के प्रति व्यापक पुनर्विचार का भी प्रस्थान-बिन्दु सिद्ध हुआ। भौगोलिक परिसीमन सम्पूर्ण भारतीय संघ है, यद्यपि विश्लेषण में केन्द्रीय नीति-निर्माण को क्षेत्रीय अनुभवों के साथ जोड़कर देखा गया है।

2. अवधारणात्मक ढाँचा एवं साहित्य समीक्षा

'राष्ट्र-निर्माण' की अवधारणा को इस अध्ययन में उस सचेत एवं सतत प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया गया है जिसके माध्यम से एक विविधतापूर्ण जनसमूह साझा राजनीतिक संस्थाओं, साझी नागरिकता एवं साझी नियति-बोध से युक्त एक समुदाय में रूपान्तरित होता है। इसे 'राज्य-निर्माण' से पृथक करना आवश्यक है, जो प्रशासन, न्यायपालिका, राजस्व-तंत्र

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

एवं बलप्रयोग के एकाधिकार जैसी औपचारिक संस्थाओं के निर्माण से सम्बद्ध है। भारतीय अनुभव की विशिष्टता यह रही कि यहाँ दोनों प्रक्रियाएँ एक साथ, एक ही समय-सीमा में तथा लोकतांत्रिक परिस्थितियों में सम्पन्न हुईं—जबकि यूरोपीय अनुभव में राज्य-निर्माण प्रायः राष्ट्र-निर्माण एवं लोकतंत्रीकरण से शताब्दियों पूर्व सम्पन्न हो चुका था।

गत दशक के शोध-साहित्य ने भारतीय राष्ट्र-निर्माण की पारम्परिक व्याख्या को तीन महत्त्वपूर्ण दिशाओं में पुनर्परिभाषित किया है। प्रथम, संवैधानिक इतिहास-लेखन में यह तर्क प्रबल हुआ है कि भारतीय संविधान एक 'शिक्षणकारी' दस्तावेज था, जिसका उद्देश्य नागरिकों को परम्परागत सामुदायिक पहचानों से मुक्त कर स्वतंत्र राजनीतिक कर्ता के रूप में गठित करना था; इसीलिए इसकी विस्तृतता, केन्द्रीयता एवं संहिताबद्धता को दोष नहीं, अपितु सुविचारित रणनीति माना जाना चाहिए (खोसला, 2020)। द्वितीय, लोकतंत्र के 'नीचे से' इतिहास-लेखन ने यह दर्शाया है कि सार्वभौमिक मताधिकार एवं संवैधानिक अधिकार केवल अभिजन-प्रदत्त उपहार नहीं थे, अपितु प्रशासनिक अधिकारियों, स्थानीय नागरिकों एवं वादकारियों की सक्रिय भागीदारी से गठित हुए (शानी, 2018; डे, 2018)।

तृतीय, संशोधनवादी इतिहास-लेखन ने नेहरू-कालीन राज्य की सर्वशक्तिमत्ता सम्बन्धी धारणा को चुनौती दी है। यह तर्क दिया गया है कि समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, गुटनिरपेक्षता एवं नियोजन जैसी श्रेणियाँ उस काल में उतनी सुसंगत एवं सुदृढ़ नहीं थीं जितनी उत्तरवर्ती स्मृति में प्रतीत होती हैं; व्यवहार में राज्य की क्षमता सीमित थी तथा नीतियाँ प्रायः समझौतों एवं विरोधाभासों से युक्त थीं (शर्मन, 2022)। इसी प्रकार 1950 के दशक को एक 'निर्माणाधीन गणराज्य' के रूप में देखने वाले अध्ययनों ने दर्शाया है कि इस दशक की विशेषता आत्मविश्वास एवं अनिश्चितता का सहअस्तित्व थी (कुडैसिया, 2017)। प्रस्तुत पत्र इसी संशोधित परिप्रेक्ष्य को स्वीकार करते हुए राष्ट्र-निर्माण को एक विवादग्रस्त, बहुकर्ता एवं अपूर्ण प्रक्रिया के रूप में विश्लेषित करता है।

3. औपनिवेशिक विरासत एवं 1947 की प्रारम्भिक परिस्थितियाँ

स्वतंत्र भारत को जो अर्थव्यवस्था विरासत में मिली, वह लगभग स्थिर विकास-दर, अत्यन्त निम्न प्रति व्यक्ति आय तथा संकीर्ण औद्योगिक आधार से युक्त थी। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में भारतीय प्रति व्यक्ति आय में वस्तुतः कोई सार्थक वृद्धि नहीं हुई, कृषि उत्पादकता स्थिर

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

रही, तथा जनसंख्या का अत्यधिक अनुपात कृषि पर निर्भर बना रहा (रॉय, 2020)। साक्षरता दर लगभग बारह प्रतिशत थी, जीवन-प्रत्याशा बत्तीस वर्ष के आसपास, तथा स्वास्थ्य अवसंरचना नगण्य। 1943 के बंगाल अकाल की स्मृति अभी ताजा थी, और खाद्यान्न की आपूर्ति आयात पर निर्भर थी।

किन्तु औपनिवेशिक विरासत केवल अभावों की सूची नहीं थी। ब्रिटिश शासन ने एक अखिल भारतीय प्रशासनिक ढाँचा, रेल एवं संचार-तंत्र, एक सुसंगठित न्यायिक व्यवस्था तथा एक व्यावसायिक सिविल सेवा भी छोड़ी, जिनका उपयोग नवीन राष्ट्र-निर्माण के साधनों के रूप में किया गया। साथ ही, 1935 के भारत शासन अधिनियम के अन्तर्गत हुए प्रान्तीय चुनावों एवं मंत्रिमण्डलों ने भारतीय नेतृत्व को शासन का व्यावहारिक अनुभव प्रदान किया था। हाल के शोध ने अन्तरिम सरकार (सितम्बर 1946–अगस्त 1947) के उस उपेक्षित कालखण्ड के महत्त्व को रेखांकित किया है, जिसमें भारतीय मंत्रियों ने वित्त, रक्षा एवं विदेश-सम्बन्धों का संचालन सीखा तथा जिसमें उत्तरवर्ती राज्य-निर्माण की अनेक प्रवृत्तियाँ पहले से ही आकार ले रही थीं (अंकित, 2019)।

इस प्रकार 1947 की परिस्थिति द्वैतपूर्ण थी। एक ओर संरचनात्मक पिछड़ापन, विभाजित प्रशासन एवं संसाधनों का अभाव था; दूसरी ओर एक अनुभवी राजनीतिक नेतृत्व, वैधता से युक्त जन-आन्दोलनकारी दल, तथा कार्यशील प्रशासनिक संस्थाएँ उपलब्ध थीं। राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया इन्हीं दो विपरीत विरासतों के बीच के तनाव में संचालित हुई। यह उल्लेखनीय है कि स्वतंत्रता से पूर्व ही भारतीय व्यापारिक एवं राजनीतिक अभिजन के मध्य नियोजित आर्थिक विकास पर व्यापक सहमति बन चुकी थी, जिसका प्रमाण 1938 की राष्ट्रीय योजना समिति तथा 1944 की बम्बई योजना में मिलता है (कुडैसिया, 2018)।

यहाँ एक पद्धतिगत बिन्दु भी रेखांकित करना आवश्यक है। औपनिवेशिक विरासत का मूल्यांकन प्रायः दो अतिवादी दृष्टियों से किया जाता रहा है—एक ओर 'धन-निष्कासन' का राष्ट्रवादी प्रतिमान, दूसरी ओर 'आधुनिकीकरण' का साम्राज्यवाद-समर्थक तर्क। समकालीन आर्थिक इतिहास-लेखन इन दोनों से हटकर एक अधिक सूक्ष्म व्याख्या प्रस्तुत करता है: औपनिवेशिक शासन ने कतिपय संस्थाओं एवं अवसंरचना का निर्माण अवश्य किया, किन्तु उसने कृषि-निवेश, जन-शिक्षा एवं स्वास्थ्य जैसे उन क्षेत्रों की व्यवस्थित उपेक्षा की जो दीर्घकालिक विकास

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

के लिए निर्णायक थे। स्वतंत्र भारत की सबसे बड़ी चुनौती इसी असंतुलित विरासत का पुनर्संतुलन थी—अर्थात् उपलब्ध प्रशासनिक क्षमता को उन सामाजिक क्षेत्रों की ओर मोड़ना जिनसे औपनिवेशिक राज्य सदैव विमुख रहा (रॉय, 2020)।

4. विभाजन, साम्प्रदायिक हिंसा एवं शरणार्थी पुनर्वास

राष्ट्र-निर्माण की भारतीय परियोजना अपने प्रारम्भ में ही विभाजन की त्रासदी से आहत हुई। धार्मिक आधार पर हुए विभाजन के परिणामस्वरूप लगभग एक करोड़ पचास लाख लोग विस्थापित हुए तथा हिंसा में मारे गए लोगों की संख्या के अनुमान पाँच लाख से बीस लाख तक विस्तृत हैं। पंजाब एवं बंगाल—दोनों विभाजित प्रान्तों—में हिंसा का स्वरूप भिन्न रहा; पंजाब में यह तीव्र, संकेन्द्रित एवं अल्पकालिक थी, जबकि बंगाल में यह दीर्घकालिक एवं आन्तरायिक रही, जिसके कारण वहाँ शरणार्थी-प्रवाह 1950 एवं 1960 के दशकों तक निरन्तर चलता रहा (सेन, 2018)।

नवीन शोध ने शरणार्थी-पुनर्वास को केवल एक मानवीय संकट-प्रबन्धन के रूप में नहीं, अपितु नागरिकता-निर्माण की एक निर्णायक प्रक्रिया के रूप में देखा है। पुनर्वास नीतियों ने यह निर्धारित किया कि कौन 'वास्तविक' शरणार्थी है और कौन नहीं, कौन राज्य-सहायता का पात्र है, तथा किन शर्तों पर विस्थापित व्यक्ति नागरिक बनता है। इस प्रक्रिया में वर्ग, जाति एवं क्षेत्र के आधार पर स्पष्ट भेद उत्पन्न हुए: पंजाबी शरणार्थियों को अपेक्षाकृत उदार एवं त्वरित पुनर्वास प्राप्त हुआ, जबकि पूर्वी बंगाल से आए, विशेषकर निम्न जातीय एवं कृषक पृष्ठभूमि के शरणार्थियों को दीर्घकालिक उपेक्षा एवं दण्डकारण्य जैसे दूरस्थ पुनर्वास-स्थलों का सामना करना पड़ा (सेन, 2018)। इसी प्रकार दक्षिण भारत एवं सीलोन के मध्य आवागमन करने वाले समुदायों के लिए विभाजन-पश्चात की विधिक व्यवस्था ने नागरिकता को एक अनिश्चित एवं विवादग्रस्त श्रेणी बना दिया (रामनाथ, 2023)।

साम्प्रदायिकता का प्रश्न भी विभाजन के साथ समाप्त नहीं हुआ। तथापि यह उल्लेखनीय है कि विभाजन-पूर्व बंगाल में साम्प्रदायिक सद्भाव हेतु व्यापक जन-प्रयास भी हुए थे, जिनकी उपेक्षा प्रायः हिंसा-केन्द्रित इतिहास-लेखन में हो जाती है (रॉय, अन्वेषा, 2018)। स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय नेतृत्व ने धर्मनिरपेक्षता को राज्य का आधारभूत सिद्धान्त बनाकर विभाजन के तर्क

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

को अस्वीकार किया, यद्यपि व्यवहार में अल्पसंख्यक सुरक्षा, धार्मिक भावनाओं से जुड़े विधिक विवाद एवं सांस्कृतिक बहुसंख्यकवाद के प्रश्न निरन्तर विवादग्रस्त बने रहे (नायर, 2023)।

5. रियासतों का एकीकरण एवं प्रादेशिक अखण्डता

स्वतंत्रता के समय लगभग 565 देशी रियासतें विद्यमान थीं, जो भारतीय भूभाग के लगभग दो-पंचमांश तथा जनसंख्या के लगभग एक-चौथाई भाग पर विस्तृत थीं। ब्रिटिश सर्वोपरिता की समाप्ति के साथ इनकी विधिक स्थिति अनिश्चित हो गई थी। सरदार वल्लभभाई पटेल एवं वी. पी. मेनन के नेतृत्व में रियासत विभाग ने विलय-पत्र (Instrument of Accession) एवं प्रिवी पर्स की व्यवस्था के माध्यम से अधिकांश रियासतों का शान्तिपूर्ण एकीकरण सम्पन्न किया। यह उपलब्धि राष्ट्र-निर्माण के प्रादेशिक आयाम की सर्वाधिक द्रुत एवं निर्णायक सफलता थी। तथापि नवीन शोध ने इस प्रक्रिया के 'शान्तिपूर्ण' चरित्र के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण संशोधन प्रस्तुत किए हैं। यह तर्क दिया गया है कि रियासतों का एकीकरण एवं सम्प्रभुता का सुदृढ़ीकरण अनेक स्थलों पर सैन्य बल एवं व्यापक हिंसा के माध्यम से सम्पन्न हुआ, जिसका सर्वाधिक स्पष्ट उदाहरण सितम्बर 1948 का हैदराबाद 'पुलिस कार्रवाई' है। इस कार्रवाई एवं उसके पश्चात हुई साम्प्रदायिक हिंसा में मरने वालों की संख्या के अनुमान अत्यन्त उच्च हैं, तथा तेलंगाना में समानान्तर रूप से चल रहे साम्यवादी कृषक विद्रोह के दमन ने भी सम्प्रभुता-निर्माण के हिंसक आयाम को उजागर किया। इस दृष्टि से गणराज्य का निर्माण केवल संवैधानिक विमर्श का नहीं, अपितु बलप्रयोग के एकाधिकार की स्थापना का भी इतिहास है (पुरुषोत्तम, 2021)। जम्मू-कश्मीर का प्रकरण सर्वाधिक जटिल सिद्ध हुआ। अक्टूबर 1947 में महाराजा हरि सिंह द्वारा विलय-पत्र पर हस्ताक्षर के पश्चात भारतीय सैन्य हस्तक्षेप, संयुक्त राष्ट्र में प्रश्न का प्रस्तुतीकरण, तथा अनुच्छेद 370 के अन्तर्गत विशेष संवैधानिक व्यवस्था—इन सभी ने कश्मीर को एक स्थायी विवाद में परिणत कर दिया। समग्रतः, रियासतों का एकीकरण भारतीय राष्ट्र-निर्माण की एक असाधारण उपलब्धि थी, किन्तु इसके भीतर निहित बलप्रयोग एवं अपूर्ण राजनीतिक एकीकरण के तत्वों को स्वीकार किए बिना इस प्रक्रिया का यथार्थपरक मूल्यांकन सम्भव नहीं।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

6. संविधान निर्माण एवं संवैधानिक राष्ट्रवाद

संविधान सभा ने दिसम्बर 1946 से नवम्बर 1949 तक लगभग तीन वर्ष की अवधि में विश्व का विस्तृततम लिखित संविधान तैयार किया, जो 26 जनवरी 1950 को प्रवृत्त हुआ। संविधान ने भारत को एक सम्प्रभु, लोकतांत्रिक गणराज्य घोषित किया, मौलिक अधिकारों की गारण्टी दी, राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों के माध्यम से सामाजिक-आर्थिक न्याय का लक्ष्य निर्धारित किया, तथा एक सशक्त केन्द्र से युक्त संघीय व्यवस्था की स्थापना की।

समकालीन संवैधानिक इतिहास-लेखन ने संविधान की तीन प्रायः आलोचित विशेषताओं—विस्तृतता, केन्द्रीयता एवं संहिताबद्धता—की एक नवीन व्याख्या प्रस्तुत की है। इस व्याख्या के अनुसार, ये विशेषताएँ एक सुसंगत लोकतांत्रिक परियोजना से उत्पन्न हुईं: संविधान-निर्माताओं का उद्देश्य नागरिकों को जाति, धर्म एवं समुदाय की परम्परागत श्रेणियों से पृथक कर एक व्यक्तिवादी, तर्कशील राजनीतिक कर्ता के रूप में गठित करना था, तथा इस हेतु राज्य को शिक्षक एवं रूपान्तरकारी अभिकर्ता की भूमिका में स्थापित करना आवश्यक था (खोसला, 2020)। संविधान इस प्रकार विद्यमान समाज का प्रतिबिम्ब नहीं, अपितु एक भावी समाज की परिकल्पना था।

संविधान का जीवन उसके अंगीकरण के साथ समाप्त नहीं हुआ। नवीन शोध ने यह दर्शाया है कि प्रारम्भिक वर्षों में साधारण नागरिकों—मद्य-विक्रेताओं, गोवध से जुड़े व्यापारियों, वेश्यावृत्ति-विरोधी विधियों से प्रभावित महिलाओं तथा राशन-नियंत्रण से पीड़ित व्यापारियों—ने न्यायालयों में मौलिक अधिकारों का उपयोग कर संविधान को दैनन्दिन जीवन का दस्तावेज बना दिया (डे, 2018)। इसी नागरिक सक्रियता की प्रतिक्रिया में 1951 का प्रथम संविधान संशोधन हुआ, जिसने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर युक्तियुक्त निर्बन्धन बढ़ाए तथा भूमि-सुधार विधियों को न्यायिक पुनरीक्षण से संरक्षित करने हेतु नवीं अनुसूची जोड़ी। यह संशोधन तीव्र संसदीय विरोध के मध्य पारित हुआ और इसने अधिकारों एवं सामाजिक रूपान्तरण के मध्य के स्थायी तनाव को उजागर किया (सिंह, त्रिपुरदमन, 2020)। संविधान-निर्माण की प्रक्रिया में सर बी. एन. राव जैसे विधिवेत्ताओं की भूमिका पर हुए अभिलेखीय शोध ने यह भी दर्शाया है कि संविधान संकीर्ण राजनीतिक हितों एवं व्यापक विधिक-संस्थागत आदर्शों के मध्य निरन्तर संघर्ष का परिणाम था (एलंगोवन, 2019)।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

संविधान सभा की संरचना पर उठाई जाने वाली प्रतिनिधित्व-सम्बन्धी आपत्ति—कि यह सीमित मताधिकार के आधार पर 1946 में निर्वाचित प्रान्तीय विधानसभाओं द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से चुनी गई थी—यथार्थ है, किन्तु अपूर्ण। सभा में अनुसूचित जातियों, महिलाओं, आदिवासी समुदायों, धार्मिक अल्पसंख्यकों एवं रियासती क्षेत्रों के प्रतिनिधि सम्मिलित थे, तथा प्रारूप समिति ने प्रान्तीय सरकारों, विधिवेत्ताओं एवं सार्वजनिक संगठनों से प्राप्त सुझावों को व्यवस्थित रूप से समाहित किया। इसके अतिरिक्त, पृथक निर्वाचन-मण्डलों की समाप्ति एवं धार्मिक अल्पसंख्यकों के लिए आरक्षण के परित्याग जैसे निर्णय स्वयं अल्पसंख्यक प्रतिनिधियों की सहमति से हुए—एक ऐसा तथ्य जो विभाजन-पश्चात के संवैधानिक विमर्श की जटिलता को दर्शाता है। संविधान की वैधता अन्ततः इसकी निर्माण-प्रक्रिया से उतनी नहीं, जितनी इसके उत्तरवर्ती स्वीकरण एवं व्यावहारिक उपयोग से अर्जित हुई (डे, 2018; खोसला, 2020)।

7. सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार, प्रथम आम चुनाव एवं दलीय प्रतिस्पर्धा

सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार का अंगीकरण भारतीय राष्ट्र-निर्माण का सर्वाधिक साहसिक निर्णय था। एक ऐसे देश में जहाँ अस्सी प्रतिशत से अधिक जनसंख्या निरक्षर थी, प्रत्येक वयस्क नागरिक को मताधिकार प्रदान करना समकालीन पश्चिमी प्रेक्षकों को अविवेकपूर्ण प्रतीत हुआ था। उल्लेखनीय यह है कि यह कार्य संविधान के प्रवृत्त होने से पूर्व ही आरम्भ हो गया था: 1947 से 1950 के मध्य संविधान सभा सचिवालय एवं प्रान्तीय प्रशासन ने लगभग सत्रह करोड़ नागरिकों की मतदाता सूचियाँ तैयार कीं। इस प्रक्रिया में स्थानीय अधिकारियों, नागरिक संगठनों एवं स्वयं नागरिकों ने सक्रिय भागीदारी की, तथा विस्थापित शरणार्थियों एवं 'पर्दानशीन' महिलाओं के पंजीकरण जैसे कठिन प्रश्नों पर सार्वजनिक विमर्श हुआ। इस प्रकार भारतीय लोकतंत्र नागरिकता के इसी प्रशासनिक-सहभागी अभ्यास के माध्यम से 'नीचे से' भी गठित हुआ (शानी, 2018)।

अक्टूबर 1951 से फरवरी 1952 तक सम्पन्न प्रथम आम चुनाव प्रशासनिक दृष्टि से एक अभूतपूर्व उपक्रम था। लगभग 17.3 करोड़ पंजीकृत मतदाताओं, दो लाख से अधिक मतदान केन्द्रों तथा निरक्षर मतदाताओं हेतु प्रतीक-आधारित पृथक मतपेटी प्रणाली के साथ यह चुनाव लगभग 45 प्रतिशत मतदान के साथ सम्पन्न हुआ। कांग्रेस ने लोकसभा की 489 में से 364

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

सीटें जीतीं, यद्यपि उसका मत-प्रतिशत लगभग 45 ही रहा—यह विसंगति आगामी दो दशकों की 'कांग्रेस प्रणाली' की संरचनात्मक विशेषता बनी।

एकदलीय प्रभुत्व के बावजूद यह अवधि राजनीतिक बहुलवाद से रहित नहीं थी। समाजवादी दल, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी, भारतीय जनसंघ तथा 1959 में स्थापित स्वतंत्र पार्टी ने विशिष्ट वैचारिक विकल्प प्रस्तुत किए। नवीन शोध ने विशेषकर स्वतंत्र पार्टी के इर्द-गिर्द विकसित हुई आर्थिक उदारवादी विचारधारा की पुनर्खोज की है, जिसने नियोजन, राज्य-नियंत्रण एवं सहकारी कृषि की आलोचना करते हुए एक स्वदेशी बाजार-समर्थक विमर्श विकसित किया तथा दक्षिण एवं पश्चिम भारत में महत्त्वपूर्ण जनाधार अर्जित किया (बालसुब्रमण्यन, 2023)। 1957 में केरल में साम्यवादी दल की निर्वाचित सरकार का गठन इस बहुलवाद का एक और प्रमाण था, यद्यपि 1959 में अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत उसकी बर्खास्तगी ने केन्द्रीय हस्तक्षेप की उस प्रवृत्ति का सूत्रपात किया जो आगे चलकर संघीय व्यवस्था के लिए चिन्ताजनक सिद्ध हुई।

8. संघीय व्यवस्था, राज्य पुनर्गठन एवं भाषाई आकांक्षाएँ

भारतीय संविधान ने एक 'सशक्त केन्द्र वाली' संघीय व्यवस्था की स्थापना की, जिसमें अवशिष्ट शक्तियाँ केन्द्र के पास रखी गईं, आपातकालीन उपबन्धों के माध्यम से केन्द्र को असाधारण अधिकार दिए गए, तथा अखिल भारतीय सेवाओं एवं एकीकृत न्यायपालिका के माध्यम से संस्थागत एकरूपता सुनिश्चित की गई। यह अभिकल्पना विभाजन के अनुभव एवं विघटन की आशंका से प्रेरित थी। समकालीन विश्लेषण यह रेखांकित करते हैं कि भारतीय संघवाद केवल केन्द्रीकृत नहीं, अपितु 'असममित' एवं 'बहु-स्तरीय' भी रहा है, जिसमें विभिन्न राज्यों एवं क्षेत्रों के लिए भिन्न संवैधानिक व्यवस्थाएँ की गईं (टिलिन, 2019)।

राष्ट्र-निर्माण की सर्वाधिक तीव्र आन्तरिक चुनौती भाषाई आधार पर राज्यों के पुनर्गठन की माँग से उत्पन्न हुई। स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान कांग्रेस ने भाषाई प्रान्तों का समर्थन किया था, किन्तु विभाजन के पश्चात नेतृत्व इस माँग के प्रति सशंकित हो गया। 1953 में पोट्टी श्रीरामुलु के आमरण अनशन एवं मृत्यु के पश्चात उत्पन्न जन-आन्दोलन ने सरकार को आन्ध्र राज्य के गठन हेतु बाध्य किया। तत्पश्चात गठित राज्य पुनर्गठन आयोग (1953) की संस्तुतियों के आधार पर 1956 का राज्य पुनर्गठन अधिनियम पारित हुआ, जिसने चौदह राज्यों एवं छह

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

संघ राज्यक्षेत्रों की नवीन व्यवस्था स्थापित की। बम्बई का प्रश्न 1960 में महाराष्ट्र एवं गुजरात के गठन से हल हुआ।

इस पुनर्गठन का राष्ट्र-निर्माण की दृष्टि से महत्व असाधारण है। भाषाई पहचान की माँग को दमन के स्थान पर संवैधानिक ढाँचे के भीतर समायोजित करके भारत ने यह सिद्ध किया कि उप-राष्ट्रीय पहचानों की स्वीकृति राष्ट्रीय एकता की विरोधी नहीं, अपितु पूरक हो सकती है। तथापि भाषा का प्रश्न पूर्णतः सुलझा नहीं। हिन्दी को राजभाषा बनाने की संवैधानिक व्यवस्था तथा 1965 की निर्धारित समय-सीमा के विरुद्ध तमिलनाडु में तीव्र प्रतिरोध उत्पन्न हुआ, जिसका समाधान 1963 के राजभाषा अधिनियम एवं उत्तरवर्ती संशोधनों के माध्यम से अंग्रेजी की सहभाषा-स्थिति को अनिश्चितकाल तक बनाए रखकर किया गया।

संघीय व्यवस्था का एक कम चर्चित किन्तु महत्त्वपूर्ण आयाम वित्तीय सम्बन्ध रहा। वित्त आयोग की संवैधानिक व्यवस्था के समानान्तर योजना आयोग द्वारा किया जाने वाला विवेकाधीन संसाधन-आवंटन एक ऐसी अतिरिक्त-संवैधानिक धुरी बन गया जिसने केन्द्र के आर्थिक प्रभाव को सुदृढ़ किया। इसी प्रकार राज्यपाल की नियुक्ति, अखिल भारतीय सेवाओं का नियंत्रण एवं समवर्ती सूची पर केन्द्रीय प्रधानता ने व्यवहार में संघीय संतुलन को केन्द्र की ओर झुकाए रखा। इन प्रवृत्तियों का तात्कालिक औचित्य राष्ट्रीय एकीकरण एवं नियोजित विकास की आवश्यकता में निहित था, किन्तु इन्होंने वे संस्थागत आदतें भी विकसित कीं जो आगामी दशकों में केन्द्र-राज्य विवादों का स्रोत बनीं (टिलिन, 2019)।

9. नियोजित आर्थिक विकास एवं आर्थिक राष्ट्र-निर्माण

मार्च 1950 में योजना आयोग की स्थापना के साथ भारत ने राज्य-निर्देशित नियोजित विकास का मार्ग अपनाया। प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951–56) मुख्यतः कृषि, सिंचाई एवं पुनर्वास पर केन्द्रित थी तथा हैरॉड-डोमर प्रतिमान पर आधारित थी; इसने लगभग 3.6 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि प्राप्त की, जो निर्धारित लक्ष्य से अधिक थी। द्वितीय योजना (1956–61) पी. सी. महालनोबिस के द्विक्षेत्रीय प्रतिमान पर आधारित थी और इसने भारी उद्योग, पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन एवं सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार को केन्द्र में रखा। भिलाई, राउरकेला एवं दुर्गापुर के इस्पात संयंत्र, परमाणु ऊर्जा आयोग तथा भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों की स्थापना इसी

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

दृष्टि की अभिव्यक्ति थी। 1956 की औद्योगिक नीति संकल्पना ने अर्थव्यवस्था को तीन श्रेणियों में विभाजित कर सार्वजनिक क्षेत्र को 'उच्चतम स्थान' प्रदान किया।

नियोजन को केवल एक तकनीकी-आर्थिक उपक्रम मानना अपर्याप्त होगा। नवीन शोध ने यह तर्क प्रस्तुत किया है कि भारत में नियोजन एक व्यापक लोकतांत्रिक एवं सांस्कृतिक परियोजना भी था: योजना आयोग ने लोकनायक जयप्रकाश नारायण से लेकर सामुदायिक विकास कार्यकर्ताओं तक विविध अभिकर्ताओं के माध्यम से, तथा प्रदर्शनियों, फिल्मों, भजन-मण्डलियों एवं सांख्यिकीय साक्षरता के प्रसार के द्वारा, नागरिकों को विकास-प्रक्रिया में सहभागी बनाने का प्रयास किया। इस अर्थ में नियोजन नागरिक-निर्माण का भी उपकरण था (मेनन, 2022)। उपलब्धियाँ वास्तविक थीं: 1950 से 1964 के मध्य सकल घरेलू उत्पाद की वार्षिक वृद्धि दर औपनिवेशिक काल की लगभग शून्य दर की तुलना में 3.5 से 4 प्रतिशत के मध्य रही, औद्योगिक उत्पादन लगभग दोगुना हुआ, तथा एक विविधीकृत औद्योगिक एवं तकनीकी आधार निर्मित हुआ। किन्तु सीमाएँ भी स्पष्ट थीं। जमींदारी उन्मूलन तो अपेक्षाकृत सफल रहा, परन्तु काश्तकारी सुधार एवं भूमि-सीमा विधियों का कार्यान्वयन राज्य-स्तरीय भू-स्वामी हितों के प्रतिरोध के कारण अत्यन्त अपूर्ण रहा। कृषि उत्पादकता स्थिर रही, जनसंख्या-वृद्धि ने प्रति व्यक्ति लाभ को सीमित किया, तथा 1957 एवं 1962 के विदेशी मुद्रा संकटों ने नियोजन-प्रतिमान की भेद्यता को उजागर किया। तृतीय योजना (1961–66) अपने अधिकांश लक्ष्यों में विफल रही, और 1960 के दशक के मध्य तक खाद्यान्न आयात पर निर्भरता पुनः बढ़ गई (रॉय, 2020)।

10. सामाजिक न्याय, जाति, लिंग एवं शिक्षा

सामाजिक राष्ट्र-निर्माण का संवैधानिक आधार अनुच्छेद 15, 16 एवं 17 में निहित था, जिन्होंने भेदभाव का निषेध किया, लोक नियोजन में अवसर की समानता स्थापित की तथा अस्पृश्यता का उन्मूलन किया। अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए विधायिकाओं एवं लोक सेवाओं में आरक्षण की व्यवस्था की गई, तथा 1955 के अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम ने भेदभाव को दण्डनीय बनाया। ये प्रावधान विश्व की प्रथम व्यापक संवैधानिक सकारात्मक कार्रवाई-व्यवस्थाओं में से थे।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

तथापि विधिक समानता एवं सामाजिक यथार्थ के मध्य की दूरी विशाल बनी रही। दलित बौद्धिक एवं राजनीतिक आन्दोलनों के इतिहास पर हुए नवीन शोध ने यह दर्शाया है कि जातिगत मुक्ति की माँग औपनिवेशिक काल से ही एक स्वायत्त बौद्धिक परम्परा के रूप में विकसित हुई थी, तथा स्वतंत्रता-पश्चात इसे राष्ट्रवादी विमर्श में समाहित करने के प्रयासों ने इसकी आमूलचूल धार को प्रायः कुंठित किया (जंगम, 2017)। डॉ. भीमराव आम्बेडकर का 1951 में विधि मंत्री पद से त्यागपत्र इस तनाव का प्रतीकात्मक क्षण था।

लैंगिक न्याय के क्षेत्र में हिन्दू संहिता विधेयक का प्रकरण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। मूल विधेयक के व्यापक विरोध के पश्चात इसे 1955–56 में चार पृथक अधिनियमों—हिन्दू विवाह अधिनियम, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, हिन्दू अल्पवयस्कता एवं संरक्षकता अधिनियम तथा हिन्दू दत्तक एवं भरण-पोषण अधिनियम—के रूप में पारित किया गया। इन विधियों ने विवाह-विच्छेद का अधिकार दिया, बहुविवाह का निषेध किया तथा पुत्रियों को उत्तराधिकार में सीमित अधिकार प्रदान किए। नवीन शोध ने यह रेखांकित किया है कि इन सुधारों का दायरा सीमित था और इन्होंने व्यक्तिगत विधियों के धार्मिक विभाजन को यथावत रखते हुए एक ऐसी विधिक बहुलता को स्थायित्व दिया जिसके परिणाम दीर्घकालिक रहे (सक्सेना, 2022)। शिक्षा के क्षेत्र में साक्षरता दर 1951 के 18.3 प्रतिशत से बढ़कर 1961 में 28.3 प्रतिशत हो गई तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग एवं भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों की स्थापना हुई, किन्तु संविधान के अनुच्छेद 45 में निर्धारित सार्वभौमिक प्रारम्भिक शिक्षा का लक्ष्य 1960 तक अप्राप्त रहा।

जनजातीय क्षेत्रों में सामाजिक राष्ट्र-निर्माण की चुनौती विशिष्ट रही। संविधान की पाँचवीं एवं छठी अनुसूचियों ने अनुसूचित क्षेत्रों एवं पूर्वोत्तर के जनजातीय क्षेत्रों के लिए पृथक प्रशासनिक व्यवस्थाएँ प्रदान कीं, जिनका उद्देश्य सांस्कृतिक स्वायत्तता का संरक्षण करते हुए क्रमिक एकीकरण था। नेहरू की 'जनजातीय पंचशील' दृष्टि ने बलात् आत्मसातीकरण एवं संग्रहालयीय पृथक्करण—दोनों को अस्वीकार किया। तथापि व्यवहार में विकास-परियोजनाओं, विशेषकर बहुउद्देशीय बाँधों एवं खनन उद्यमों, से उत्पन्न विस्थापन ने जनजातीय समुदायों पर असमानुपातिक भार डाला, तथा नागालैंड जैसे क्षेत्रों में सशस्त्र प्रतिरोध ने एकीकरण की सीमाओं को उजागर किया। समग्रतः सामाजिक राष्ट्र-निर्माण के क्षेत्र में इस काल की उपलब्धि मुख्यतः विधिक एवं संस्थागत ढाँचे के निर्माण तक सीमित रही; सामाजिक व्यवहार के स्तर पर

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

रूपान्तरण की प्रक्रिया कहीं अधिक धीमी एवं असमान सिद्ध हुई (जंगम, 2017; कुडैसिया, 2017)।

11. विदेश नीति, राष्ट्रीय सुरक्षा एवं 1962 का आघात

राष्ट्र-निर्माण का एक अनिवार्य आयाम अन्तरराष्ट्रीय व्यवस्था में राष्ट्र की स्वायत्त पहचान का निर्माण था। गुटनिरपेक्षता की नीति इसी आवश्यकता की अभिव्यक्ति थी—शीत युद्ध के दोनों गुटों से समान दूरी बनाए रखते हुए स्वतंत्र निर्णय-क्षमता का संरक्षण। 1954 का पंचशील समझौता एवं 1955 का बाण्डुंग सम्मेलन इस नीति के प्रतीकात्मक शिखर थे। नवीन अन्तरराष्ट्रीय इतिहास-लेखन ने यह तर्क दिया है कि गुटनिरपेक्षता निष्क्रिय तटस्थता नहीं, अपितु एक सक्रिय एवं विधि-केन्द्रित हस्तक्षेपकारी नीति थी, जिसका परीक्षण कोरिया, स्वेज, हंगरी एवं कांगो जैसे संकटों में हुआ तथा जिसने संयुक्त राष्ट्र के शान्ति-स्थापना ढाँचे को आकार देने में भूमिका निभाई (नायडू, 2024)।

तुलनात्मक विश्लेषण यह भी दर्शाते हैं कि गुटनिरपेक्षता के भीतर भी भिन्न सामरिक दृष्टियाँ विद्यमान थीं, तथा नेहरू-कालीन एवं उत्तर-नेहरू-कालीन विदेश नीति के मध्य निरन्तरता एवं परिवर्तन दोनों के तत्व मौजूद थे (दौलत सिंह, 2019)। पाकिस्तान के साथ सम्बन्धों में भी केवल शत्रुता ही नहीं थी; 1947 से 1952 के मध्य दोनों राष्ट्रों ने शरणार्थी सम्पत्ति, अल्पसंख्यक संरक्षण एवं जल-बँटवारे जैसे प्रश्नों पर व्यावहारिक द्विपक्षीय व्यवस्थाएँ विकसित कीं, जिनकी परिणति 1960 की सिन्धु जल सन्धि में हुई (राघवन, पल्लवी, 2020)।

अक्टूबर–नवम्बर 1962 का भारत-चीन युद्ध इस अवधि का सर्वाधिक गम्भीर आघात सिद्ध हुआ। हिमालयी सीमान्त क्षेत्रों में भारतीय एवं चीनी राज्य-सत्ता के मध्य 1910 से ही चली आ रही प्रतिस्पर्धात्मक 'राज्य-निर्माण की होड़' के अभिलेखीय अध्ययन यह दर्शाते हैं कि सीमान्त पर प्रशासनिक उपस्थिति एवं वैधता की स्थापना का संघर्ष युद्ध से बहुत पहले आरम्भ हो चुका था, तथा भारत की सापेक्ष कमजोरी इसी दीर्घकालिक असंतुलन से उत्पन्न हुई (ग्यो-रेशार, 2017)। पराजय के परिणाम बहुआयामी थे: रक्षा व्यय में तीव्र वृद्धि, सैन्य आधुनिकीकरण, गुटनिरपेक्षता की व्यावहारिक पुनर्व्याख्या, नेहरू की व्यक्तिगत प्रतिष्ठा का ह्रास, तथा नियोजित विकास हेतु उपलब्ध संसाधनों में कटौती। 1964 में नेहरू के निधन के साथ भारतीय राष्ट्र-

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

निर्माण का प्रथम चरण एक ऐसे मोड़ पर समाप्त हुआ जहाँ आत्मविश्वास की जगह आत्म-परीक्षण ने ले ली थी।

12. निष्कर्ष: उपलब्धियों एवं सीमाओं का समग्र मूल्यांकन

1947 से 1964 तक की अवधि का समग्र मूल्यांकन करते हुए यह कहा जा सकता है कि भारतीय राष्ट्र-निर्माण की यह प्रथम पारी उल्लेखनीय रूप से सफल, किन्तु किसी भी अर्थ में पूर्ण नहीं थी। उपलब्धियों की सूची प्रभावशाली है: विभाजन की त्रासदी एवं शरणार्थी संकट का प्रबन्धन, 565 रियासतों का एकीकरण, एक व्यापक एवं रूपान्तरकारी संविधान का निर्माण, निरक्षर समाज में सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार का सफल कार्यान्वयन, तीन सामान्य निर्वाचनों का शान्तिपूर्ण सम्पादन, भाषाई पहचानों का संवैधानिक समायोजन, एक औद्योगिक एवं वैज्ञानिक आधार का निर्माण, तथा अन्तरराष्ट्रीय मंच पर एक स्वायत्त पहचान की स्थापना।

तथापि प्रत्येक उपलब्धि के साथ एक अनसुलझा अवशेष भी जुड़ा रहा। लोकतंत्र स्थापित हुआ, किन्तु एकदलीय प्रभुत्व एवं केन्द्रीय हस्तक्षेप की प्रवृत्ति ने प्रतिस्पर्धी राजनीति के विकास को सीमित किया। संवैधानिक समानता स्थापित हुई, किन्तु जातिगत एवं लैंगिक अधीनता सामाजिक व्यवहार में निरन्तर बनी रही। नियोजित विकास ने औद्योगिक आधार तो बनाया, किन्तु भूमि सुधार की अपूर्णता एवं कृषि की स्थिरता ने निर्धनता-उन्मूलन को अवरुद्ध किया। धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना हुई, किन्तु व्यक्तिगत विधियों की बहुलता एवं साम्प्रदायिक भावनाओं के प्रश्न विवादग्रस्त बने रहे। गुटनिरपेक्षता ने कूटनीतिक प्रतिष्ठा दी, किन्तु 1962 ने सामरिक तैयारी की कमी को उजागर किया।

नवीनतम शोध-साहित्य का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान यही है कि उसने इस काल की सुसंगतता एवं सर्वशक्तिमत्ता सम्बन्धी मिथकों का विखण्डन किया है और इसे विरोधाभासों, समझौतों एवं सीमित राज्य-क्षमता से युक्त एक यथार्थ ऐतिहासिक प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत किया है (शर्मन, 2022; कुडैसिया, 2017)। यह पुनर्मूल्यांकन इस काल की उपलब्धियों को कम नहीं करता, अपितु उन्हें अधिक विश्वसनीय बनाता है—क्योंकि जो उपलब्धियाँ अपार बाधाओं, आन्तरिक असहमतियों एवं संसाधनों की कमी के मध्य अर्जित की गई हों, वे किसी सर्वशक्तिमान राज्य की योजनाबद्ध सफलताओं की अपेक्षा कहीं अधिक उल्लेखनीय हैं।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

अन्ततः, इस कालखण्ड का सर्वाधिक स्थायी योगदान संस्थागत है। संविधान, निर्वाचन आयोग, स्वतंत्र न्यायपालिका, संघीय ढाँचा, अखिल भारतीय सेवाएँ एवं संसदीय परम्पराएँ—ये सभी उस प्रारम्भिक काल की देन हैं और आज भी भारतीय गणराज्य की आधारशिला बनी हुई हैं। भारतीय अनुभव यह सिद्ध करता है कि विविधता, निर्धनता एवं सामाजिक जटिलता लोकतांत्रिक राष्ट्र-निर्माण की अनिवार्य बाधाएँ नहीं हैं, बशर्ते संस्थागत कल्पनाशीलता, राजनीतिक धैर्य एवं समावेशन के प्रति प्रतिबद्धता उपलब्ध हो। साथ ही यह भी स्मरणीय है कि राष्ट्र-निर्माण एक ऐसी प्रक्रिया है जो कभी पूर्ण नहीं होती; 1964 में जो प्रश्न अनुत्तरित छोड़े गए, वे आगामी दशकों में—और अनेक अर्थों में आज भी—भारतीय लोकतंत्र की कार्यसूची पर बने हुए हैं।

संदर्भ सूची

1. अंकित, राकेश (2019). *अन्तराल में भारत: अन्तरिम सरकार, सितम्बर 1946–अगस्त 1947*. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
2. एलंगोवन, अरविन्द (2019). *मानदण्ड एवं राजनीति: भारतीय संविधान के निर्माण में सर बी. एन. राव, 1935–50*. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
3. कुडैसिया, ज्ञानेश (2017). *निर्माणाधीन गणराज्य: 1950 के दशक में भारत*. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
4. कुडैसिया, मेधा एम. (2018). *समृद्धि से भेंट: भारतीय व्यवसाय एवं 1944 की बम्बई योजना*. गुडगाँव: पेंगुइन रैंडम हाउस इंडिया।
5. खोसला, माधव (2020). *भारत का संस्थापक क्षण: एक अत्यन्त आश्चर्यजनक लोकतंत्र का संविधान*. कैम्ब्रिज (मैसाचुसेट्स): हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
6. ग्यो-रेशार, बेरेनिस (2017). *छाया-राज्य: भारत, चीन एवं हिमालय, 1910–1962*. कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
7. गुहा, रामचन्द्र (2017). *गांधी के बाद भारत: विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र का इतिहास* (संशोधित एवं संवर्धित संस्करण). नई दिल्ली: पिकाडोर इंडिया।
8. जंगम, चिन्नैया (2017). *दलित एवं आधुनिक भारत का निर्माण*. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
9. टिलिन, लुईस (2019). *भारतीय संघवाद*. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

10. डे, रोहित (2018). *एक जन-संविधान: भारतीय गणराज्य में विधि का दैनन्दिन जीवन*. प्रिंसटन: प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।
11. दौलत सिंह, जोरावर (2019). *शक्ति एवं कूटनीति: शीत युद्ध के दौरान भारत की विदेश नीतियाँ*. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
12. नायडू, स्वप्ना कोना (2024). *नेहरू-युग: भारतीय गुटनिरपेक्षता का एक अन्तरराष्ट्रीय इतिहास*. कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
13. नायर, नीति (2023). *आहत भावनाएँ: दक्षिण एशिया में धर्मनिरपेक्षता एवं अपनत्व*. कैम्ब्रिज (मैसाचुसेट्स): हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
14. पुरुषोत्तम, सुनील (2021). *राज से गणराज्य तक: भारत में सम्प्रभुता, हिंसा एवं लोकतंत्र*. स्टैनफोर्ड: स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
15. बालसुब्रमण्यन, आदित्य (2023). *एक मुक्त अर्थव्यवस्था की ओर: लोकतांत्रिक भारत में स्वतंत्र पार्टी एवं विपक्षी राजनीति*. प्रिंसटन: प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।
16. मेनन, निखिल (2022). *लोकतंत्र का नियोजन: आधुनिक भारत की विकास-यात्रा*. कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
17. रामनाथ, कल्याणी (2023). *तूफान में नौकाएँ: विभाजन के पश्चात दक्षिण एशिया में विधि, प्रवास एवं शरणार्थी*. स्टैनफोर्ड: स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
18. राघवन, पल्लवी (2020). *शत्रुता का शमन: भारत-पाकिस्तान सम्बन्धों का एक वैकल्पिक इतिहास, 1947–1952*. लंदन: हर्स्ट एण्ड कम्पनी।
19. रॉय, अन्वेषा (2018). *शान्ति एवं दंगे: बंगाल में साम्प्रदायिकता एवं साम्प्रदायिक सद्भाव, 1940–1947*. कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
20. रॉय, तीर्थंकर (2020). *भारत का आर्थिक इतिहास, 1857–2010* (चतुर्थ संस्करण). नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
21. शानी, ओर्निट (2018). *भारत लोकतांत्रिक कैसे बना: नागरिकता एवं सार्वभौमिक मताधिकार का निर्माण*. कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
22. शर्मन, टेलर सी. (2022). *नेहरू का भारत: सात मिथकों में एक इतिहास*. प्रिंसटन: प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

23.सक्सेना, सौम्या (2022). *विवाह-विच्छेद एवं लोकतंत्र: स्वतंत्रता-पश्चात भारत में व्यक्तिगत विधि का इतिहास*. कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

24.सिंह, त्रिपुरदमन (2020). *सोलह तूफानी दिन: भारत के संविधान के प्रथम संशोधन की कहानी*. गुड़गाँव: वाइकिंग/पेंगुइन रैंडम हाउस इंडिया।

25.सेन, उदिति (2018). *नागरिक शरणार्थी: विभाजन के पश्चात भारतीय राष्ट्र का निर्माण*. कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।